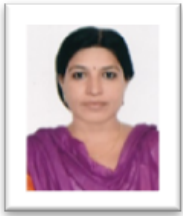


कौटिल्य अर्थशास्त्र, मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति में राजनीतिक चिंतन



पुष्पा

व्याख्याता,
संस्कृत विभाग,
गौरी देवी राजकीय महिला,
महाविद्यालय, अलवर,
राजस्थान

सारांश

कौटिल्य का अर्थशास्त्र राजनीति व अर्थशास्त्र का बहुपयोगी निधि है। कौटिल्य अर्थशास्त्र के आधार पर यह सिद्ध होता है कि इसमें राज्य प्रबन्ध सम्बन्धी समस्त सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषय वर्णित हैं जिनका गहन अध्ययन करके संसार क राजनीतिक तथा कूटनीतिज्ञ भी आश्चर्ययुक्त हैं। इसी प्रकार मनुस्मृति में आचार, व्यवहार, राजनीति तथा मनुष्य को मनुष्य बनाने वाले विचार अनुस्यूत हैं जिनके कारण भारत से बाहर भी मनु आज भी स्मरणीय तथा प्रतिष्ठित हैं। थाईलेण्ड संसार का एक ऐसा देश है जहां मनु महाराज की मूर्ति स्थापित कर उस पर लिखा है—

“The first law giver of the world.”

याज्ञवल्क्य स्मृति मनुस्मृति की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक व सुगठित है। याज्ञवल्क्य स्मृति में विषद व्याख्या व सूक्ष्मवर्णन है। उपरोक्त वर्णन के आधार पर हम निष्कर्षरूपेण यह कह सकते हैं कि कौटिल्य अर्थशास्त्र, मनुस्मृति व याज्ञवल्क्य स्मृति तीनों में जीवन के प्रत्येक पक्षों की भांति राजनीतिक चिंतन प्रक्रिया पर भी उपयोगी व सारगर्भित तत्व विद्यमान हैं जो अन्यत्र दुर्लभ हैं।

मुख्य शब्द : अर्थशास्त्र, याज्ञवल्क्य, मनुस्मृति

परिचय

भारतीय चिन्तन में जीवन के लौकिक व पारलौकिक पक्षों को विभाजित नहीं किया गया है। भारतीय दृष्टिकोण मानव जीवन की सांसारिक यात्रा की समाप्ति को, यात्रा का अन्त नहीं मानता, बल्कि यात्रा के एक खण्ड का अवसान और एक नई यात्रा के प्रारम्भ का बिन्दु मानता है। जीवन की यह यात्रा निरन्तर चलती हुई, अन्त में ब्रह्म से एकाकार हो जाने पर सत्य के साक्षात्कार के परम श्रेय की प्राप्ति तक जारी रहती है। अतः भारतीय दृष्टि जीवन को लौकिक या पारलौकिक के रूप में न तो विभाजित करती है और न इन दोनों में किसी अन्तर्विरोध की कल्पना करती है, यही कारण है कि भारतीय चिन्तन मानव जीवन के लिए धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष चारों लक्ष्यों की एक साथ और एक टकराव रहित सिद्धि को श्रेष्ठ मानता है।

मानव जीवन को नियमित, और प्रयोजन एवं औचित्य के अनुसार निर्दिष्ट करने वाली प्राधिकृत सत्ता एवं व्यवस्था के रूप में राज्य से केवल अर्थ व काम को ही नहीं बल्कि धर्म और मोक्ष को भी महत्व प्रदान करने की अपेक्षा की जाती है।

भारतीय चिन्तन में धर्म, अर्थ और राज्य को परस्पर निर्भर और सम्बद्ध माना गया है। धर्म, अर्थ और राज्य की यह परस्पर सम्बद्धता एवं निर्भरता राज्य के सामाजिक दायित्वों, राज्य के नैतिक स्वरूप राज्य सत्ता पर नियंत्रण एवं अनुशासन आदि समस्त सैद्धान्तिक प्रश्नों का एक साथ उत्तर दे देती है।

कौटिल्य ने सुख का मूल कारण धर्म को काना है। धर्म का आधार अर्थ में बताया गया है और यह व्यक्त किया है कि अर्थ का मूल राज्य है। कौटिल्य के अनुसार आत्म नियंत्रण व अनुशासन द्वारा ही राज्य की सत्ता रह सकती है। मनुस्मृति मानव जीवन की एक सामान्य आचार संहिता है, और वह राजधर्म को एक स्वतंत्र व स्वायत्त विधा के रूप में नहीं बल्कि, मानव जीवन के अनुक पक्षों में से एक पक्ष के रूप में प्रस्तुत करती है। अर्थशास्त्र मूल रूप से राजनीतिक प्रकृति के ग्रन्थ हैं, और दण्डनीति को एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में स्वीकार करते हुए, ज्ञान की अन्य शाखाओं से उसके अनिवार्य संबंध का प्रतिपादित करते हैं।

स्मृति ग्रन्थ के रूप में मनुस्मृति एवं याज्ञवल्क्यस्मृति में अर्थशास्त्र व शुक्रनीतिसार के मध्य उपरोक्त प्रकृतिगत भिन्नता होते हुए भी इनमें एक समानता भी है और वह यह कि इन सभी ग्रन्थों में अपने युग की यथार्थ

राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों का संकेत ही नहीं मिलता, अपितु आचरण की केवल आदर्श अपेक्षाओं का निर्धारण भी मिलता है।

प्राचीन भारत में जो राजतंत्र सैद्धान्तिक और व्यावहारिक रूप से स्थापित था, उसके स्वेच्छाचारी बनने के पर्याप्त अवसर विद्यमान थे। राजतंत्र एक व्यक्ति का शासन था जिसे वंश परम्परागत आधार पर संचालित किया जाता था। उसे देवता या देवताओं के समान मानते हुए एक अति मानवीय रूप दिया गया था। राजा के विरोध का प्रत्येक दृष्टि से अनुचित माना जाता था। स्वभावतः इन परिस्थितियों का लाभ उठाकर एक स्वार्थी राजा अपने वैयक्तिक स्वार्थ की पूर्ति के लिए राज्य शक्ति का दुरुपयोग कर सकता था। कुछ राजाओं ने इस प्रकार का आचरण भी प्रस्तुत किया था। इन स्वेच्छाचारी शासकों या राजाओं की अधीनता में राज्य जन कल्याण का साधक न होकर जनशोषण का कारण हो सकता था। राजतंत्र के इस स्वरूप पर नियंत्रण रखने के लिए ही समयनुसार भारतीय राजनीति विषारदों तथा आचार्यों ने ऐसे विभिन्न प्रतिबन्धों की व्यवस्था की जो राजा को स्वेच्छाचारी बनने से रोक सकें और शासक का वैयक्तिक स्वार्थ की पूर्ति का साधन करने से रोक कर लोक कल्याण की ओर उन्मुख कर सकें।

विविध प्रतिबन्धों की व्यवस्था द्वारा राजा से यह अपेक्षा की गई कि वह अपने जीवन को प्रजापालन के लिए समर्पित करे। मानव स्वभाव में निहित कमजोरियों को ध्यान में रखकर भारतीय राजनैतिक आचार्यों ने शासक पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये थे।

शासक शासित जनता पर नियंत्रण पाने के लिए सशक्त बनने का प्रयत्न करता है और जनता शासक पर नियंत्रण स्थापित करने की कोशिश करती है। शासक और शासित जनता के संबंधों को मधुर बनाने के लिए अनेक व्यवस्थाएँ की थीं। जिनके फलस्वरूप प्राचीन भारत में शासकों पर नियंत्रण रहा और उस समय के शासकों को जन हितैशी माना जाता था।

वेदों, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति महाभारत और अर्थशास्त्र में शासन की जो रूपरेखा देखने को मिलती है उससे यह ज्ञात होता है कि भारतीय विचारक शासक की निरंकुशता सत्ता के विरोधी थे। एक ओर जहाँ राजा को राज्य के सर्वोच्च अधिकारी के रूप में स्वीकार किया गया था, वहीं उस पर अंकुश रखने के लिए जनतांत्रिक संस्थाओं सभा और समिति, धर्म, मंत्री परिषद, जनता आदि का प्रावधान हुआ था। विधि-विधान का शासक से पूर्णतया मुक्त रखा गया था। इसे मौलिक विचारकों के अधिकार क्षेत्र का विषय माना गया था।

प्राचीन भारत में, आरम्भ में राज्य केवल आवश्यक कार्यों से ही सम्बन्ध रखता था। वैदिक युग में यह राज्य विदेशी शत्रुओं के प्रतिकार और आन्तरिक व्यवस्था एवं सुशासन बनाए रखने का काम करता था। शतपथ ब्राह्मण के मतानुसार इहलोक का राजा देवलोक के राजा वरुण की भाँति धर्मपति था अर्थात् वह धर्म और नीति का संरक्षक था और वरुण की भाँति दुष्टों का दमन करके राज्य में सुशासन स्थापित करना था। किन्तु

सम्भवतः उन दिनों राजा न्याय का कार्य नहीं करता था। दीवानी और फौजदारी मामलों का निर्णय पंचायतें ही करती थीं। वैदिक युग के बाद शनैः-शनैः राज्य के कार्यों में विस्तार होने लगा।

चौथी शताब्दी ईस्वी पूर्व तक राज्य के कार्यक्षेत्र में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से इस पर बहुत प्रकाश पड़ता है और यह ज्ञात होता है कि वैदिक युग में जहाँ राज्य का प्रधान उद्देश्य आन्तरिक उपद्रवों से तथा बाह्य आक्रमणों से देश की रक्षा करना था, वहाँ अब उसका आदर्श राज्य की तथा नागरिकों की उन्नति करना समझा जाने लगा। आर्थिक उन्नति और भौतिक दृष्टि से देश को समृद्ध बनाने के लिए राज्य की ओर से उद्योग-धन्धे चलाना, नई बस्तिया बनाने, नई जमीन कृषि योग्य बनाना, बाध बनवाने, खानें खुदवाने, कारीगरों और शिल्पियों को संरक्षण देने की व्यवस्था शुरू हुई। सामान्य जनता तथा उपभोक्ताओं के हितों का ध्यान रखते हुए नाप तथा तोल का मान स्थिर करने, वस्तुओं का संचय और मुनाफाखोरी रोकने के लिए राज्य की ओर से अधिकारी नियुक्त किए जाने लगे। कारीगरों की सुरक्षा के लिए श्रम कानूनों की व्यवस्था की गई। कौटिल्य के विधान के अनुसार कारीगर का हाथ या आँख बेकार कर देने वाले को प्राणदण्ड मिलता था। भौतिक समृद्धि के साथ-साथ जनता की नैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक उन्नति की ओर भी पूरा ध्यान दिया गया।

राजनीतिशास्त्र पर स्वतन्त्र रूप से लिखे जाने वाले कौटिल्य अर्थशास्त्र आदि ग्रन्थों में राज्य का उद्देश्य धर्म, अर्थ और काम की वृद्धि करना बताया गया है। धर्म की वृद्धि का अर्थ किसी विशेष धार्मिक सम्प्रदाय या मत का प्रोत्साहन देना नहीं है, अपितु सदाचार और सुनीति के प्रोत्साहन से जनता में सच्ची धार्मिक भावना और सदाचार की प्रवृत्ति का संचार करना है। इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए राज्य विभिन्न धर्मों और मतों को सहायता देता था और ज्ञान-विज्ञान को प्रोत्साहित करता था। दूसरा लक्ष्य अर्थ की वृद्धि करना था, इसके प्रमुख साधन, कृषि, उद्योग और वाणिज्य का विकास तथा कृषि की उन्नति के लिए सिंचाई, बाध और नहरों का प्रबन्ध और खानों, तालाबों, कुआ का खोदना था। तीसरा उद्देश्य काम की वृद्धि था, इसका अभिप्राय यह था कि देश में शान्ति और सव्यवस्था स्थापित करके प्रत्येक नागरिक को बिना किसी विघ्नबाधा के सब प्रकार के न्यायपूर्ण सुखों को भोगने का अवसर दिया जाए; संगीत, नृत्य, चित्रकला, भवननिर्माण आदि ललित कलाओं के पोषण से देश में सुरुचि और सुसंस्कृति का विकास किया जाए। कौटिल्य के राजतन्त्र का आदर्श है—

“प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च प्रियं हितम्
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्
(कौटिल्य अर्थशास्त्र 1 अधिकरण/18 अध्याय)

अर्थात् राजा का अपना सुख कुछ नहीं है। प्रजा का सुख ही राजा का सुख है और प्रजा के हित में ही उसका हित है। उसका अपना प्रिय और हित कुछ भी नहीं है। प्रजा का प्रिय और हित ही उसका प्रिय और हित है।

भारतीय आचार्यों ने शासन के विस्तृत कार्य-क्षेत्र के प्रतिपादन के साथ ही राज्य-शक्ति के संव्यवहार की मर्यादाओं पर विशेषतः बल दिया है। भारतीय ग्रन्थ शासकीय निरंकुशता का निशेध करते हैं तथा शासकीय शक्ति के संव्यवहार पर नैतिक, सैद्धान्तिक, संस्थागत, प्रक्रियात्मक व व्यावहारिक मर्यादाओं की स्थापना पर बल देते हैं। यह टिप्पणी प्रासंगिक है कि शासन की शक्ति के संव्यवहार को मर्यादित रखने की आवश्यकता के संबंध में सभी भारतीय ग्रन्थों का दृष्टिकोण प्रायः समरूप है। विभिन्न ग्रन्थों में शक्ति के संव्यवहार की मर्यादाओं के संबंध में व्यक्त दृष्टिकोण की भिन्नता, इन मर्यादाओं की प्रत्याभूति को सुनिश्चित करने के लिए संस्तुत साधनों व उपकरणों के संबंध में ही दृष्टिगत होती है। शासकीय शक्ति की मर्यादाओं के विशिष्ट पक्षों के संबंध में ही दृष्टिगत होती है। शासकीय शक्ति की मर्यादाओं के विशिष्ट पक्षों के संबंध में प्रस्तुत अध्ययन के संबंधित अध्यायों में विस्तृत विवेचन किया गया है, यथा प्रसंग निष्कर्ष-परक टिप्पणियां भी की गयी है। तुलनात्मक आकलन की दृष्टि से मनुस्मृति, शुकनोतिसार, रामायण व महाभारत आदिग्रन्थों में शासकीय शक्ति की मर्यादाओं के संबंध में व्यक्त दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण भी प्रासंगिक है।

कौटिल्य ने राज्य के विषय कार्यक्षेत्र के अनुरूप राजा को व्यापक शक्तियां प्रदान की हैं, किन्तु राजा की निरंकुश सत्ता का समर्थन नहीं किया। कौटिल्य की स्पष्ट मान्यता है कि राजा का अनुशासित रहना, राज्य और प्रजा दोनों के हित के लिए आवश्यक है। राजा द्वारा शक्ति के प्रयोग को नियंत्रित और मर्यादित करने के लिए कौटिल्य ने अनेक प्रकार के नीतिगत, संस्थागत, प्रक्रियागत व व्यावहारिक आयामों का सुझाव दिया है।

कौटिल्य ने शासक को धर्म के अधीन रहने का सुझाव दिया है। कौटिल्य के अनुसार धर्म-सत्य, अहिंसा, दया, अकूरता आदि सार्वभौम नैतिक नियमों का संग्रह है। साथ ही धर्म में राजा के कर्तव्य तथा उनके निष्ठापूर्वक निर्वाह का दायित्व भी निहित है। कौटिल्य शासक को राजकीय कार्यों को सम्पन्न करने के क्रम में एक ओर उसके दायित्वों के प्रति सचेत करते हैं, वहीं उसे सावधान करते हैं कि प्रत्येक राजकीय आदेश को, धर्म के रूप में व्यक्त किये गये सार्वभौमिक और शाश्वत नैतिक नियमों के अधीन होना चाहिए।

मनु ने शासक को धर्म के अधीन माना है। यही कारण है कि राजकीय कर्तव्यों की सैद्धान्तिक मीमांसा को मनु ने अपने ग्रन्थ के 'राजधर्म' के नाम से परिभाषित किया है। मनु के अनुसार राजधर्म की अवहेलना करने से शासक देवल से गिर जाता है।

मनु ने राजा से यह अपेक्षा को है कि वह व्यक्ति के चारों पुरुषार्थों का प्रयोजन समझे एवं आलस्य रहित होकर इनका पालन करने में तत्पर रहे। इन चारों पुरुषार्थों-मोक्ष, धर्म, अर्थ और काम में, मोक्ष को मनुष्य के चरम लक्ष्य के रूप में परिभाषित करते हुए, उसे सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया है, किन्तु अन्य तीन पुरुषार्थों की उपेक्षा नहीं की गई। मनु का दृष्टिकोण है कि अर्थ, काम व धर्म लौकिक पुरुषार्थ हैं। अतः मानव के लौकिक जीवन

में इन तीनों पुरुषार्थों को सिद्ध करके ही, व्यक्ति के पारलौकिक कल्याण का पथ प्रशस्त होता है। मनु के अनुसार व्यक्ति अर्थ व काम को धर्म के अनुसार मर्यादित करके सुखमय लौकिक जीवन व पारलौकिक कल्याण को सुनिश्चित कर सकता है। स्वयं धर्म से शासित रहते हुए, प्रजा के व्यवहार में धर्म को सुनिश्चित करना, मनु के अनुसार शासक का पवित्र कर्तव्य है मनु का मत है कि प्रजा के द्वारा चारों पुरुषार्थों की सिद्धि के लिए प्रयत्नशील रहकर ही शासक स्वयं धर्म की सिद्धि करता है एवं कल्याण की प्राप्ति कर सकता है।

मनुस्मृति में दण्ड के महत्व का प्रतिपादन करते हुए भी यह स्पष्ट किया गया है कि राजा द्वारा इसका प्रयोग स्वार्थ-सिद्धि हेतु नहीं किया जा सकता। ग्रन्थ में शासक को कठोर चेतावनी दी गयी है यदि शासक दण्ड का उचित रीति से प्रयोग नहीं करता तो वह दण्ड के द्वारा ही नष्ट कर दिया जाता है। मनुस्मृति में दण्ड को न्याय व्यवस्था का एक अंग माना गया है, अर्थात् राज्य में न्याय व्यवस्था को बनाये रखने में दण्ड एक साधन मात्र है। ग्रन्थ में कहा गया है कि अपराध के अनुरूप दिया गया दण्ड प्रजा को स्वधर्म हेतु प्रेरित करता है, जबकि अविवेकपूर्ण रीति से दिया गया दण्ड शासक को बान्धवों सहित नष्ट कर देता है।

इन दुर्गुणों के आधार पर भी प्रजा राजकीय आचरण व नियंत्रण को चुनौती नहीं दे सकती। यदि कोई राजा धर्म का उल्लंघन करता है, अपने कर्तव्यों के पालन में निष्क्रियता बरतता है अथवा अपनी शक्ति का अन्याय-पूर्वक उपयोग करता है तो ये परिस्थितियां भी मनु के अनुसार राजा को राज्य के विरुद्ध विद्रोह का अधिकार प्रदान नहीं करती। राजा के अनुचित आचरण के विरुद्ध मनु ने राजा को जो चेतावनियां दी हैं वे राजकीय सत्ता पर जनता का नियंत्रण स्थापित नहीं करती, अपितु पारलौकिक, नैतिक अथवा संस्थागत नियंत्रणों को स्पष्ट करती है।

याज्ञवल्क्यस्मृति में राज्य अथवा राजा की उत्पत्ति के संबंध में स्पष्ट नहीं किया गया है। जबकि मनु ने राज्य अथवा राजा की उत्पत्ति के संबंध में अष्टलोकपालों के सारभूत अंश को राजा में मानकर उसे देवत्व का स्थान प्रदान किया है। याज्ञवल्क्य भी याज्ञवल्क्यस्मृति में सप्तांग सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि स्वामी, अमात्य, जन, दुर्ग, कोष, दण्ड, मित्र थे साथ में मूल कारण है। इसलिए यह राज्य का सप्तांग कहलाता है।

मनुस्मृति की भांति याज्ञवल्क्य स्मृति भी राजतंत्रीय शासन व्यवस्था का उल्लेख करती है। अन्य पूर्वगामी आचार्यों के समान ही याज्ञवल्क्य के अनुसार शासन के कार्यों का क्षेत्र सम्पूर्ण मानव जीवन तक विस्तृत है। उदाहरण के लिए राजा का यह कर्तव्य है कि वह सभी परिवारों, श्रेणियों, गणों व जनपदों को अनुशासित रखे। जिससे कि वे सभी अपने-अपने कर्तव्यों का पालन समुचित रूप से करें। सामाजिक व्यवस्था को कठोरता के साथ बनाये रखना है। दुष्टों और अपराधियों को सर्वदा

दण्ड मिलना ही चाहिए। राजा को अपने परिजनों व संबंधियों को अपराध करने पर दण्डित करना चाहिए।

याज्ञवल्क्यस्मृति में राजा के कार्यों का विस्तार सम्पूर्ण मानव जीवन तक फैला है। याज्ञवल्क्यस्मृति राजा में विभिन्न गुणों और कर्तव्यों का बखान इस प्रकार करती है—

राजा को महाउत्साही, कर्तज्ञ (उपकार मानने वाला) वृद्ध सेवी, विनय युक्त, सत्य सम्पन्न, पवित्र, शीघ्र काम करने वाला, स्मृतिवान (जो बात न भूले), धार्मिक, अव्यसनी, पण्डित, शूर और रहस्य जानने वाला होना चाहिए। राजा को आत्मविद्या, राजनीति तथा लाभ के उपायों में प्रवीण होना चाहिए। राजा अपने मंत्रियों अथवा ब्राह्मणों के साथ राज कार्य देखे और फिर एकान्त में बैठकर स्वयं विचारे, उसको चाहिए कि ब्राह्मणों को सुख भोग और धन दे क्योंकि राजा जो कुछ ब्राह्मणों को देता है वह उसकी अक्षय निधि (धन की खान) है। जो धन नहीं मिलता है उसको धर्म से पाने का उपाय करे। जो मिल चुका है उसे यत्न से सुरक्षित करें, रक्षित धन को नीति से वृद्धि करे और जब वह बढ़े तो सुपात्रों को दान करें। उसको चाहिए कि वह अपने जन कोष और शरीर की रक्षा के लिए जंगल युक्त हो। धर्म, अर्थ आदि कार्यों में उनके करने योग्य कार्य ही करे। अपने कार्य में चतुर और रूचि रखने वाले हो। आय और व्यय की कर्म में उदत्त हो ऐसे व्यक्तियों को ही राजा अधिकारी बनाये।

मनु और याज्ञवल्क्य दोनों ने ही राजा को धर्म के अधीन रखा है और इस बात पर बल दिया है कि

राजा सर्वथा प्रजा का पालन व उसकी रक्षा करे। राजा का प्रषिक्षण और उसकी दिनचर्या भी उसे स्वेच्छाचारिता अथवा निरंकुशता की ओर नहीं जाने दे सकते। राजा को दैवीय अथवा दैवांश बताया गया है। किन्तु बल उसके देवत्व पर है न कि उसके अधिकार अथवा निरंकुशता पर। राजा चाहे बालक ही हो मनुष्य मान कर अपमानित नहीं करना चाहिए। मनु ने सर्वप्रथम राजा को निरंकुश राज सत्ता प्रदान की परन्तु बाद में असीमित शक्ति का दुरुपयोग होने लगा तो मनुस्मृतिकार ने धर्म और दण्ड की कल्पना करके राजा की असीमित शक्ति को धर्म और दण्ड के अधीन कर दिया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. राम निहोर पाण्डेय 2003, मनुस्मृति, इलाहाबाद : प्राच्य विद्या संस्थान
2. तुलसीराम स्वामी, 2003, मनुस्मृति, नई दिल्ली : भाषानुवाद, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
3. अल्तेकर ए. — प्राचीन भारतीय शासन पद्धति : भारती भण्डार लीडर प्रैस, इलाहाबाद।
4. याज्ञवल्क्य स्मृति
5. गैरोला, वाचस्पति, 2003, कौटिल्य का अर्थशास्त्र एवं चाणक्य सूत्र, चौखम्बा प्रतिष्ठान, वाराणसी।